**सहजानंद शास्त्रमाला**

# प्रवचनसार प्रवचन

# भाग-5

**रचयिता**

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

**प्रकाशक**

**श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ**

**एवं**

**श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास**

**गांधीनगर, इन्दौर**

**Online Version : 001**

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

# प्रवचनसार प्रवचन

## तृतीय, चतुर्थ व पंचम भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

द्वितीय संस्करण ११०० | सन् १९७४ | मूल्य

# आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

०००O०००

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमें छात्रों द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा।

# प्रवचनसार प्रवचन पंचम भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

अब यह एक द्रव्य वही-वही है और अन्य-अन्य भी है। इस प्रकार एक द्रव्यमें अन्यत्व व अनन्यत्व दोनों धर्मोंका विरोध दूर करते हैं—

दव्वट्ठियेण सव्वं तं दव्वं पज्जयट्ठियेण पुणो।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्कालं तम्ममत्तादो ॥११४॥

**नयविवक्षासे द्रव्यकी अन्यता व अनन्यताका प्रतिपादन**—द्रव्यार्थिकनयसे वह सब द्रव्य है और पर्यायार्थिकनयसे वह अन्य-अन्य होता है, क्योंकि उस कालमें पर्यायमय होनेसे द्रव्य पर्यायसे अनन्य है। द्रव्यार्थिकनयसे सब पर्यायें द्रव्य हैं, अतः अनन्य हैं। वह दूसरी-दूसरी नहीं हैं, जुदी-जुदी नहीं हैं, अलग-ललग नहीं हैं अर्थात् वही-वही हैं। द्रव्यार्थिकनयसे जैसे एक जीव है, अगर वह नारकी है तो नारकी कहलावेगा। मगर जीव द्रव्य तो वही है और मनुष्य है तो मनुष्य ही कहलावेगा, परन्तु जीवद्रव्य तो वही है एवं देव है तो देव नाम से ही पुकारा जायगा और तिर्यञ्चगतिमें होनेसे तिर्यंच कहलावेगा, परन्तु जीव तो सर्वत्र वही है जिस गतिमें है वह वही-वही हुआ, दूसरा-दूसरा नहीं है। इस तरह सब द्रव्यें अनन्य हैं। पर्यायार्थिकनयसे उसी समयमें अन्य-अन्य होती हैं। द्रव्यार्थिकनयसे तीनों कालोंमें एक ही द्रव्य चलता है। इसके कहनेका यह प्रयोजन है कि द्रव्यार्थिकनयसे सब पर्यायोंका समूह एक ही द्रव्य है। पर्यायार्थिकनयसे एक-एक पर्याय अलग-अलग हैं तो वह भिन्न-भिन्न है, अन्य-अन्य है। सामान्य तौरसे देखें तो सभी मनुष्य एक समान हैं, किन्तु यदि वहीं गाय बैठी हो तो वह वहाँ सम्मिलित नहीं है। अनेक प्रकारसे द्रव्यको कहकर एक तरहसे देखना, यह तिर्यक सामान्य है। तिर्यक सामान्य और तिर्यक विशेष एवं ऊर्ध्वता सामान्य और ऊर्ध्वता विशेषकी अपेक्षा चार भेद होते हैं।

**सामान्य दृष्टिमें विकल्पोंका क्लेश नहीं है**—अनेक प्रकारके मनुष्य, वकील, मजिस्ट्रेट, सेठ, रायबहादुर, विद्वान, त्यागी, साहूकार आदि बैठे हैं। उन्हें सबको समान भावसे ग्रहण करना तिर्यक सामान्य है और एक ही तरहकी द्रव्योंमें विशेष-विशेष तौर ग्रहण करना, वकील को जुदा, सेठको जुदा और गरीबको जुदा यह तिर्यक विशेष है। ऊर्ध्वता सामान्य एक द्रव्यमें होता है और ऊर्ध्वता विशेष अनेक-अनेक द्रव्योंमें होता है। जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य आदिको कहना, यह तिर्यक सामान्य है। जीव कह दिया, यह तिर्यक सामान्य हो गया और अवान्तर सत्ताको कहना, यह तिर्यक विशेष हो गया अथवा जब मनुष्य कह दिया तो तिर्यक सामान्य कहलाया या गायें कह दीं, यह तिर्यक सामान्य कहलाया और जब कहा कि यह काली गाय है, यह पंजाबकी दुधारू गाय है, यह भूरी भैंस है आदि यह तिर्यक विशेष है। जिसका दूध निकाला जाता है वह क्या तिर्यकसामान्य गायोंमें मिल जावेगा ? नहीं, क्योंकि जो दूध होगा वह जुदा-जुदा एक-एक गायसे ही तो निकाला जावेगा वह तिर्यक विशेष हुआ। गौ जातिका दूध नहीं मिल सकता। इसमें सभी गायोंका दूध होना चाहिए। अर्थक्रिया वस्तु विशेषमें होती है। द्रव्य दो तरहसे देखा जाता है—(१) अनुगताकार और (२) व्यावृत्ताकार। जो द्रव्यमें सबमें चला जावे उसे अनुगताकार कहते हैं। व्यावृत्ताकार जो लक्षण इसमें है, वह इसमें नहीं है और जो इसमें है वह इसमें नहीं है। द्रव्यार्थिकनयसे सभी द्रव्य अनन्य-अनन्य हैं अर्थात् वही-वही हैं, दूसरे-दूसरे नहीं हैं। जब कहते हैं कि सभी द्रव्य एक हैं तो द्रव्यार्थिक नयसे ऐसा कहा जा रहा है और जब कहते हैं कि द्रव्यके अनेक भेद हैं तो पर्यायार्थिकनय सापेक्ष द्रव्यार्थिकनय हो गया। जितने नयोंको ग्रहण किया जाता है उससे भी अधिक हो सकते हैं। जिस अभिप्रायसे जो काम किया जाय और कहीं जाना पड़े, वह उसी तरहका नय हो जावेगा। पर्यायार्थिकनयमें गये तो अलग-अलग पर्यायें हो जावेंगी। द्रव्यके लक्षण ८०-८५ तरहसे कहे हैं। उनमें कई लक्षण सब द्रव्योंमें घट जावेंगे और कुछ नहीं कर सकेंगे। इससे यही अर्थ ग्रहण किया जावेगा, तीन कालकी पर्यायोंका समूह द्रव्य है। यह कहना सत्य भी हो सकता है और सत्यसे रहित भी हो सकता है। द्रव्यार्थिकनयसे उपर्युक्त कथन सत्य है और पर्यायार्थिकनयसे सत्य नहीं है। वर्तमान पदार्थ मात्र द्रव्य है। यह कहना पर्यायार्थिक नयसे सही है और द्रव्यार्थिकनयसे गलत है। बच्चेको माँ अंगुली बताकर कहती है कि वह चन्द्रमा है। वहाँ माँ अंगुलीसे चन्द्रमाको स्पर्श करके तो नहीं बता रही है। यहाँ भी नयमें भिन्नता पड़ जावेगी। जितने भी स्याद्वाद हैं, वह प्रमाणपर पहुंचानेके लिए हैं। इससे वस्तुका खुलासा हो जाता है।

**वस्तुमें सामान्य और विशेष दोनों धर्म हैं**—जिस समय पर्यायार्थिकनयसे ही वर्णन करेंगे और उसीको मानकर रह जावेंगे, तब दूसरे समयमें वह द्रव्य ही नहीं रहेगा। तब फिर

वह उस पर्यायमें रहा या अगले पर्यायमें । अगर वह नहीं रहे तो अन्य-अन्य ही द्रव्य मानना पड़ेगा । तन्मय द्रव्य देखा था । उसे देखा क्या था ? पर्यायमय द्रव्य सब वस्तुयें सामान्यविशेषात्मक हैं । वस्तुमें अनुगत और व्यावृत दोनों धर्म मौजूद हैं । वस्तुमें सामान्य विशेष दोनों हैं । इसलिए जो जाना जाता है वह सामान्य है और उसमें बारीकीसे भेद करके जानना विशेष है या तुम्हारे ज्ञानमें सामान्य विशेष मालूम हुआ । वस्तुमें सामान्य विशेष सिद्ध करता है । ज्ञानको शुरूमें सिद्ध करते हैं । जहाँ सामान्य और विशेषकी ओरसे वर्णन करेंगे वहाँ वस्तु सामान्यविशेषात्मक है । वस्तु अनुगताकार और व्यावृत्ताकार दोनों तरफसे ग्रहण की जाती है । अतएव मनमें जो धारणा बना रखी है वस्तु उसी तरहसे नहीं है । किसी अपेक्षासे उसका अन्य भाव हो सकता है और किसी अपेक्षासे उसका दूसरा-दूसरा भाव (अर्थ) निकल सकता है । किसीके दिमागमें आवे कि वस्तु इसी तरहसे है, दूसरी तरहसे नहीं है या जैसा सोच लिया वैसा वस्तुको बनना पड़ेगा, यह बात यहाँ नहीं घटती है, किन्तु जैसा हमने वस्तुको सोच लिया, उसीके धर्मको लक्ष्यमें रखना पड़ता है । वस्तुमें कोई खासियत जरूर है । वह स्पष्ट समझमें आ रही है । तत्त्वको छूते हुए चलना चाहिए । कोई जैसे कहे खम्भा वगैरा कुछ नहीं है । इस तरह कहना सब विडम्बनायें हैं । कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ पत्थरमें भी आत्मा है और तुममें भी आत्मा है । जहाँ देखो वहाँ आत्मद्रव्य है । इसपर नयवादसे विचार करनेपर सभी बातें सही उतरती हैं । ज्ञानसे दुःखी क्यों है ? सविकार परिणाम ही अज्ञान है । कोई कहते हैं कि ज्ञाननिवृत्तिसे सुख है और कोई अज्ञाननिवृत्तिसे सुख बताते हैं । स्वभावमें स्थित होनेसे सुख होता है यह ठीक है और अज्ञानसे सुख है, यह भी ठीक है । जितनी भी वस्तुएँ हैं वह सामान्यविशेषात्मक हैं । सामान्यको देखनेकी दृष्टि भिन्न है और विशेषकी दृष्टि भी भिन्न है । मनुष्य है, मनुष्य है—इस तरहसे होने वाला अभिप्राय व्यक्ति विशेषकी दृष्टिसे भिन्न है और एक-एक करके देखनेसे जुदा-जुदा प्रतीत होता है । यह विशेष आशय है ।

**दो प्रकारके ज्ञानचक्षु**—सामान्यसे देखने वाली आँखका नाम द्रव्यार्थिकनय है, इसके लिए दाईं आँखकी कल्पना कर सकते हैं और विशेषकी अपेक्षासे देखनेका नाम पर्यायार्थिकनय नय है । इसमें बाईं आँखकी कल्पना कर सकते हैं और दोनोंसे देखना सामान्य विशेष है एवं किन्हीं आँखोंसे नहीं देखना तथा जो पूर्वमें देख चुके वह भले रहे, तब वह आँखोंसे आत्मानुभवकी कला जीवनमें उतारी जाती है । जितनी भी तरहकी आँख हैं वह काम सभी आती हैं । मतलब यह सारा नय समझ लो और फिर सारा नयवाद हटा दो । नय वस्तुको जानना मात्र है । राजाके दरवाजेपर द्वारपाल रहता है । उस समय कोई मिलने जाता है । तब द्वारपाल द्वारा राजा मिलनेकी आज्ञा माँगी जाती है । आज्ञा मिलनेपर मिलने वाला व्यक्ति द्वारपालके साथ जाता है । द्वारपाल उसे महलके दरवाजेपर छोड़ देता है और अब

मिलने वाला अपनी हिम्मतसे जाता है राजाके पास। अगर उसकी हिम्मत नहीं हुई तो वह ऐं ऐं करके शर्मिन्दा होकर नीचा मुंह करके खड़ा रह जाता है। धुकधुकी हटे तब वह हिम्मत कर सकता है। उसी पचड़ेमें पड़ते रहे तब कुछ लाभ नहीं होगा। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। यह जानने वालेकी दो आँखें होती हैं। एक सामान्यकी और दूसरी विशेषके जानने वालेकी है। यह सारा नयवाद वस्तुस्वरूप रूप राजासे मिलाने वाला द्वारपाल है। इस द्वारपालका काम वस्तुस्वरूपके आँगन तक पहुंचा देनेका है। आगे तो यह प्रतीतिका काम स्वयं करता है।

इन आंखोंमें द्रव्यार्थिकनयसे देखो और पर्यायार्थिकनयसे देखो और दोनों आँखको बन्द करके देखो और दोनों आँखोंको उन्मीलित करके देखो। इसमें जो देखा जाता है वह अभेद, भेद, भेदाभेद व अनुभय देखा जाता है। द्रव्यार्थिकनयसे जीव दिखा, पर्यायार्थिकनयसे नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्ध दिखा, उभयसे समग्र दिखा, अनुभयसे अनुभव हुआ।

**द्रव्यसामान्य पर्यायोंमें अनुगत है**—नरकगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, देवगति और सिद्धगति—इस तरहसे पांच भेद होते हैं। इन गतियोंमें किसीमें भी व्यवस्थित रहने वाला जीव सामान्य एक है। उसे अवलोकन करने वाला विशेष अपेक्षासे नहीं देखे। ऊर्ध्वता सामान्य एक द्रव्य है और तिर्यंच सामान्यका एक द्रव्यमान लेवे। सब वस्तुओंको जो द्रव्य बनाया वह तिर्यक् सामान्य है और सबको एक दृष्टिसे बनाया वह विशेष सामान्य है। जिस दृष्टिसे द्रव्य को देखा जाता है, वैसा ही अन्तर पड़ जाता है।

एक समयकी बात है—भोजन करनेके पश्चात् श्रावकके घर कुछ समय ठहरे। बैठनेपर या तो वहां धर्मचर्चाकी बात होती है या परिचय आदि पूछा जाता है। तब वहां एक स्त्री थी, जो वृद्ध जैसी मालूम पड़ती थी और पुरुष नवयुवक लड़का जैसा। तब उस नवयुवकसे यकायक प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारी मां होगी, जबकि थी पत्नी। उस समय जिस पतिको स्त्रीका लड़का समझ लिया था वह पासमें ही बैठे लड़केको बताकर कहता है कि इसकी माँ है। प्रश्नकर्ता एवं उत्तरदाता दोनोंको झिझक खानेका मौका नहीं आया। यह अन्तर इसी तरह पाये जाते हैं। किन्हीं किन्हीं पति-पत्नीमें, पति पिता जैसा वृद्धसा मालूम होता है और पत्नी छोटी लड़की जैसी नवोढा मालूम पड़ती है या उसके लड़केकी बहू समान। इस तरहके अन्तरको उन्हींके मुखसे जाना जा सकता है। इसी तरह वस्तु है तो कुछ और तथा उसे मान कुछ और रहे हैं। मनुष्य, देव, नारकी तिर्यंचमें रहने वाला वह सब जीवद्रव्य है। इस तरह प्रतिभास होता है, किन्तु उसको भ्रमसे मान रहे हैं, यह नहीं है और यह इस तरह नहीं है। यह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें फर्क पड़ रहा है। आगे बतावेंगे दोनों दृष्टियां ठीक रहीं। द्रव्यका स्वरूप किस तरह है, वह जाननेमें आवेगा।

वही वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। अतः वस्तुके स्वरूपको देखने वाले पुरुषोंके यथाक्रम सामान्य व विशेषका परिच्छेदन (ज्ञान) कराने वाली दो चक्षु (दृष्टियां) हो जाती हैं। एक तो द्रव्यार्थिकनयकी, दूसरी पर्यायार्थिकनयकी। उनमें पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि (चक्षु) को बिल्कुल बन्द करके केवल खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षुसे देखा जाता है। तब नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धपर्यायात्मक विशेषोंमें व्यवस्थित एक जीव सामान्यका अवलोकन करने वालोंको नहीं देख रहे हैं। विशेषोंको जो पुरुष उनको वह सब (प्रतिपर्याय) जीवद्रव्य प्रतिभास होता है, परन्तु जब द्रव्यार्थिककी चक्षु (दृष्टि) बिल्कुल बन्द करके केवल खुले हुए पर्यायार्थिक चक्षुसे देखा जाता है तब जीवद्रव्यमें व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायात्मक अनेक विशेषोंके देखने वालों को, नहीं देख रहे सामान्यको जो पुरुष उनको, वह अन्य-अन्य प्रतिभास होता है। प्रश्न—पर्यायें अन्य-अन्य हैं इससे वह द्रव्य क्यों अन्य-अन्य प्रतिभास होता है? उत्तर—उन उन विशेषों (पर्यायों) के कालमें वह द्रव्य (दृष्टान्त में जीव) तन्मय है अर्थात् उस-उस पर्यायमय होनेसे अनन्य है। सो द्रव्य ही पर्यायार्थिकनय की दृष्टिसे अन्य-अन्य प्रतिभास होता है।

**पदार्थ सामान्य और विशेष दोनों दृष्टियोंसे जाना जाता है**—द्रव्यको द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनय दोनोंसे ही जाना जा सकता है। कोई एकान्तनयको लेकर वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती है। जब द्रव्यार्थिकनयसे देखा गया तो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि हुए, वह भिन्न-भिन्न नहीं हैं, किन्तु जीवकी विशेष-विशेष परिणतियाँ हैं। जैसे व्यवस्था शब्दका पर्यायवाची प्रबन्ध है। व्यवस्था = विशेष अवस्था बनाना है। जो चीज पहलेसे चल रही है, उसका नाम व्यवस्था है और प्रबंध प्रकर्ष रूपसे बांध देना, इसका नाम प्रबंध है। जब आपस में स्वर (मिलाप) होवे वहाँ व्यवस्था की जाती है और जहाँ टेढ़े-मेढ़े चलते हों वहां व्यवस्था नहीं होती है, किन्तु प्रबन्ध करना पड़ता है। शुरूमें प्रबन्धकी आवश्यकता होती है और बाद में व्यवस्थाकी जरूरत होती है। इन दोनों शब्दोंमें अंतर है। जीवद्रव्य पहलेसे व्यवस्थित है। ऐसा तो जीव सामान्य देखने वाले भव्य जीव पर्यायार्थिकनयकी आँखको बन्द कर लेते हैं और द्रव्य वाली आँखको खोल लेते हैं। 'द्रव्यं इति प्रतिभाति' जीवद्रव्य इस तरह प्रतिभासित होता है और जब द्रव्यार्थिकनयको एकान्तसे बन्द कर लिया और पर्यायार्थिकनयसे उन्मीलित करके आँखसे देखा तो पर्यायें नजर आवेंगी। मनुष्यका 'पर' शब्दका डरपोक अर्थमें प्रयोग करते हैं, किन्तु 'कायर = कस्य आयं राति आत्मा कायरः' अर्थात् आत्माको जो लाभ करा देवे वह ऐसे जीवका नाम कायर है। सोचा फिर दुनिया इन सबको कायर क्यों कहने लगी? तब तत्त्वज्ञानी भी तो कायर हैं, क्योंकि जो मन, वचन, कायकी क्रियाको कुछ नहीं कर सके, इस तरहका ज्ञानी मोही सुभटोंकी दृष्टिमें कायर ही तो, कहलाया। जैसे कोई कंजूस दान देने

आदि उदारताकी बात बखानने लगे तो वह बात करनेकी अपेक्षा विश्वास करने योग्य है, किन्तु अन्तरंगकी परिणतिसे विश्वसनीय नहीं कहलाता है। क्योंकि उससे जब दान देने या महान कार्य करनेके लिए कहा जावेगा तब वह गुपचुप सिर नीचा करके रह जायगा या बातों में टाल देगा। केवल पर्यायार्थिकनय देखो या द्रव्यार्थिकनय देखो तो दोनोंमें दृष्टि सजग रहती है। पर्यायार्थिकनयसे जब देखा तब जीव द्रव्यसे व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध हैं। इनमें देखने वालोंको किया है अवलोकित जिसको वह अन्य है, अन्य है, इस तरह कहते हैं कि इस ग्रन्थमें जिसका मन है वह अन्यपना अर्थात् अनमना है।

**अनमने मत बनो**—कोई कहे कि तुम अनमने क्यों हो? आज तुम्हें क्या हो गया है? अनमना अर्थात् जिसका मन दूसरेमें है, दूसरे पदार्थोंको दिलसे चाहता है। ऐसा व्यक्ति और मिट गया है अनमनापन जिसका, ऐसे व्यक्तिको बोलेंगे निजमना। जो भी उदास मिलेंगे वह इसीलिए कि उनका मन औरमें बसा है। जब-जब भी दुःख है, क्लेश होता है तब अनमनापन रहता है। जो बड़े खुश हो रहे हैं, वैभवमें मस्त हो रहे हैं, रंगरेलियोंके सामने और कुछ नहीं सुहाता है। सदैव आहारकथा, राष्ट्रकथा आदिकी चर्चायें चल रही हैं। उन्हींकी विशेषताओंपर बुद्धि खर्च की जा रही है। ऐसे व्यक्ति अनमने ही होते हैं। वह धनी हो, वकील हो, पंडित हो, नेता हो या बाबू आदि कोई भी हो, वे यदि यह सब जो अन्य-अन्य प्रतिभास होते हैं उनमें उपर्युक्त हैं तो अनमने ही हैं। जीवको (मेरे लिए) तो एक पर्याय भी अन्य मन बनानेमें पटु है। जीव चाहता है कि मैं ध्रुव रहूं। मैं करोड़पति हूं तो इस धनका मालिक तुम्हें (पुत्रादि) बनाता हूं। इसका तात्पर्य यह है कि धन अध्रुव है। ध्रुवको हर कोई स्वीकार करता है, अध्रुवको कोई भी नहीं चाहता है। जीव भी अध्रुव नहीं रहता है। अगर ध्रुव बनना है तो दृष्टि भी ध्रुवपर देनी पड़ेगी। जिसकी दृष्टि अध्रुवपर रहेगी वह ध्रुव नहीं बन पावेगा। सदृशकी वजहसे वही तो पर्याय है ऐसा लगे, किन्तु पर्याय क्षणवर्ती है। ध्रुवपर दृष्टि दें तो ध्रुव बन जावेंगे। अविनाशीपर दृष्टि देवें तो अविनाशी बन जावेंगे। निस्तरंग होना जो पसंद करेगा वह निस्तरंग हो जावेगा। मोहमें लीन रहने वाला मोही हो जावेगा और निर्मोहकी अवस्थाको अच्छा समझने वाला वैसा आचरण करेगा। इस तरह सभीपर बहुत-बहुत बीतती है। अपना हित एवं अहित करना हाथमें है। इसी प्रवचनसारमें एक जगह लिखा है। यह केवलज्ञान क्या है? अनादि, अनन्त, असाधारण, अहेतुक ज्ञानस्वभावको कारण रूपसे ग्रहण करके स्वयं ही परिणमता हुआ ज्ञान है। सभी गुणोंके सभी परिणमन स्वयं विपरिणममान होते हैं। स्वभावका आश्रय करके विपरिणममान परिणाम स्वभावपरिणमन है। स्वभावके आलम्बनसे आत्मापर विजय पाना है, क्योंकि वह ध्रुव अहेतुक आदि ज्ञानरूप भाव वाला आत्मा है। स्वभावपर विजय पानेसे आत्मा स्वयं ही वैसा परिणाम

जाता है। यह परमात्माकी हालत है। अनादि अनन्तको कारण बनाकर केवलज्ञानी स्वयं ही परिणाम रहे हैं। तत्त्वज्ञानीकी हालत क्या है ? ज्ञानी सब उपद्रवोंपर विजय पाकर निश्चिन्त निर्बाध रहता है। हर एक कोई निज स्वभावसे परिणमता है, परन्तु कोई पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि रखता हुआ विभावरूप परिणमता है, कोई निज मर्मको समझ कर निजत्वपर लक्ष्य रखता है और स्वभाव परिणमनरूप परिणमता है।

**पर्यायरूपमें प्रतिसमय परिणत पदार्थको सामान्यभावसे देखना अध्यात्म कला है**—ज्ञानस्वभावका कहीं बाहरसे प्रवेश नहीं है। वह तो आत्माका विकास ही है, किन्तु वह नाटकीय भाषामें पहले नहीं था, बादमें आ गया, इस तरहसे प्रदर्शित करते हैं। इसीको प्रवेश करना कहते हैं। चीज पहले नहीं थी और अब बन गई है ऐसा भी नहीं है, किन्तु उस ज्ञान विकासपर पर्दा पड़ा था। प्रति समयमें एक ज्ञान शक्तिसे जाने गये, अन्य-अन्यसे नहीं, इस तरह द्रव्यार्थिकनयसे मालूम पड़ता है। पर्यायार्थिकनयसे देखनेपर अन्य-अन्य प्रतिभासित होते हैं। जैसे कि एक आग है। वह कंडा, घास, पत्ता, काठमें लगी हुई है। उस समय वह केवल आगरूप ही देखी जा रही है। हालांकि वहाँ लकड़ीकी आग, कंडेकी आग, तृणकी आग तथा कंडेकी आग, तृणकी आग तथा कंडेकी (उपले) आग—इस तरह भी पर्यायरूपोंमें कह सकते हैं। किन्तु पर्यायें जुदी-जुदी ग्रहण न करके एक आग द्रव्यके रूपमें वह ग्रहण की जा रही है। उस वक्त कंडा, घास, पत्ते, भूसे, काठ, कपड़े, मिट्टीका तेल, पावर आदिकी आग सब गौण हो गई हैं। यह कंडेकी, पत्तीकी, लेंडी आदिकी है, इस तरह भेद नजर नहीं आवेगा। यहाँ दृष्टान्तमें आगको द्रव्य बनाया। द्रव्य जो है वह अपने-अपने पर्यायमें है। द्रव्य उन विशेषों से तन्मय है। यह एक सीधी अंगुली है, तब यह सीधेपनसे युक्त है तथा इसीको टेढ़ी करनेपर अंगुलीका द्रव्य वही है, किन्तु पर्यायार्थिकनयसे अनेक अवस्थाओंरूप हो रही है। जब-जब जिस-जिस पर्यायका जो-जो समय है, वह उस-उस समय उस-उस रूप होता है। पर्यायकालमें द्रव्य अन्य-अन्य होता है। जैसे कि कंडे आदिकी आगमें दिखाया है। अग्निको हव्यवाह भी बोलते हैं। जिस समय जो होता धार्मिक अनुष्ठानके लिए हवन करता है, तब हव्ववाह बोला जाता है। ऐसा नहीं है कि कोई चिलम पीनेके लिए हव्ववाह माँगता हुआ आ जावे। उसी तरह अग्निको वैश्वानर भी कहते हैं। जिसका बिगड़ा हुआ रूप बुन्देलखण्डकी तरफ वैसान्दुर भी है। यह शब्द भी अपने स्थानपर बड़ा महत्त्व रखता है। वैश्वानर शब्द पूजन करते समय धूप खेने को ही किया जाता है। शब्दोंके जो-जो अर्थ हैं वह अपने-अपने स्थानपर अलग अलग महत्त्व रखते हैं। अग्निकी तरह उन सबको जुदी-जुदी अपेक्षाको लेकर प्रयोग किया जाता है।

**दोनों दृष्टियोंकी उन्मीलना व तुल्यता**—कोई सामने एक फोटो टंगी है। उसे एक

दाईं आँखसे बन्द करके देखनेपर उसका कुछ रूप नजर आवेगा और बाईं आँख बन्द करके देखनेसे फोटो कुछ सरकीसी मालूम पड़ेगी। कई चित्र इस तरहके होते हैं जो कि उन्हें देखनेसे अपनी तरफको नजर मिलातेसे मालूम पड़ते हैं। वह किसी भी ओरसे देखे जावें उनका मुंह आपसमें मिलता हुआसा मालूम पड़ता है। मोटरमें दो लाइटें जलती हैं, उनमें एकको बन्द कर देनेपर उसका जुदा तिरछासा प्रकाश फिंकेगा और जब दोनों रोशनियोंको जला दिया जावेगा तब प्रकाश अधिक होगा व तेज रहेगा और अपनी सीधमें काफी जगहमें फैल सकेगा। यही वृत्ति आँखोंकी है। द्रव्यार्थिकनयसे वस्तुको देखो तो वस्तुका असली निरपेक्ष स्वभाव ही कहनेमें आवेगा और उसको सब तरफसे देखनेपर पर्यायार्थिकनय नजरमें आवेगा। तुलना करनेको तुल्यकाल कहते हैं। एक ही समयमें उसे स्पष्ट कर दिया जावे। तुल्य समानताका भी पर्यायवाची है। सम या समान कहनेकी अपेक्षा तुल्य शब्द बढ़िया है। जिस क्षणमें तुलना हो गई, उस समय भावमें द्रव्यार्थिकनय खोला गया। उसीमें यह पर्यायार्थिकनय खोला गया तो केवल द्रव्य ही द्रव्य नहीं है। उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे उन्मीलित कर दिया गया। फिर देखो तो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्धत्व पर्याय भी व्यवस्थित स्थिर ज्ञात हो जावेंगे।

**द्रव्यार्थिक**—देखो—जिस समय द्रव्यार्थिक दृष्टि व पर्यायार्थिक दृष्टि दोनों एक ही कालमें खोल करके, उन्मीलित करके यहाँ-वहाँ सब ओरसे देखा जाता है, तब नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायोंमें व्यवस्थित जीवसामान्य व जीवसामान्यमें व्यवस्थित नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव व सिद्धत्व पर्यायात्मक विशेष एक कालमें ही देखे जाते हैं। इसका भाव यह हुआ कि प्रमाणसे यही प्रमाणित हुआ कि जीवसामान्य व जीवविशेष सब कुछ ठीक है। प्रमाण सब नयोंका समूह है, नय प्रमाणका एक देश है। मूलमें नयके दो भेद हैं—(१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय। अभेद प्ररूपक नयोंका द्रव्यार्थिकनयमें अन्तर्भाव हो जाता है व भेदप्ररूपक नयोंका पर्यायार्थिकनयमें अन्तर्भाव हो जाता है। यहाँ नयको चक्षुकी उपमा दी है। इन दोनों चक्षुओंमें से एक चक्षु द्वारा देखना, सो एक देशका अवलोकन है और दोनों चक्षुओंसे देखना, सो सर्वदेशका अवलोकन है। सर्वावलोकनमें द्रव्यकी अन्यता व अनन्यता दोनों प्रतिभास होते हैं, उनका विरोध या विप्रतिषेध नहीं होता। अहो! कैसे वैभवशील, स्वतंत्र, परिपूर्ण, अखण्ड द्रव्य हैं? यह सब द्रव्यसामान्यका वर्णन चल रहा है। देखो भैया! द्रव्यके स्वरूपके परिचयसे ही मोह भागा जा रहा है। अहो देव, अहो वीतराग महर्षि, अहो जिनशासन! तुम्हें मेरी अभिवन्दना है। तुम्हारे परिचयके प्रसादसे मैं कृतार्थ हूं, अनुगृहीत हूं, आभारी हूं।

इस प्रकार ज्ञेयाधिकारकी इन २२ गाथावोंमें द्रव्यस्वरूपका वर्णन हुआ। अब आगे

की गाथामें इसी सिलसिलेको लेकर कि द्रव्यमें सदुत्पाद व असदुत्पाद और अन्यता व अनन्यता आदि सर्वविरोधका निवारण करनेके लिये सप्तभंगी, स्याद्वाद, अपेक्षावाद, अनेकान्त प्रदर्शन, समन्यवाद, दृष्टिवाद आदि सब पर्यायवाची शब्द हैं। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस विषयका वर्णन अब ज्ञेयाधिकारकी २३वीं गाथामें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य करेंगे।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाज्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

**पदार्थोंकी गणना व एक पदार्थकी सीमा**—जगतके पदार्थोंको जाननेके लिए इतना तो जानना आवश्यक है कि संसारमें समस्त पदार्थ कितने हैं? तब तो कोई बात उनके सम्बंधमें कही जा सकती है। समस्त पदार्थ कितने हैं? यह जाननेके लिए यह समझाना पड़ेगा कि एक पदार्थ कितना होता है? एक पदार्थ इतना होता है जितना कि वह त्रिकाल अखण्ड रहे अर्थात् जिसका कभी टुकड़ा न हो सके, उतना एक पदार्थ होता है। जगतमें हमें जो कुछ दिखता है वह एक पदार्थ नहीं, वह अनेक पदार्थोंका कुञ्ज था सो वह बिखर गया, इसीको लोग टुकड़ा होना कहते हैं। जैसे हम एक जीव है; क्यों एक हैं? इस लिए की हमारे दो टुकड़े नहीं हो सकते। इसी प्रकार प्रत्येक जीवोंकी बात है। दिखने वाले पुद्गलोंमें जो एक एक अविभागी परमाणु हैं वे एक एक पदार्थ हैं। जो कुछ दिखाई देता उसे एक व्यवहारमें कह देते हैं—वह एक नहीं है, किन्तु अनेकोंका समूह है। तभी उसके कई हिस्से हो जाते हैं।

**एकके विभागका अभाव**—जैसे कोई दस चीजोंका समूह है। वह बिखरकर ६ और ४ की संख्यामें बंट जाय तो यह चीजका टुकड़ा होना नहीं कहलाता, किन्तु अनेक चीजें थीं वे बिखर गईं। अनेकोंको एक मानना भ्रम है, स्कन्धोंको एक पदार्थ मानना मिथ्यात्व है। स्कन्ध परमाणु सारी दुनियामें भरे पड़े हैं। संसारमें अगर ये दृश्य पदार्थ एक चीज होती तो उसके टुकड़े नहीं हो सकते थे। यह दृश्यमान सब अनन्त परमाणुओंका कुञ्ज है। जिसे हम देखते हैं वह अनन्त परमाणुओंसे बना हुआ है। जैसे मन भर गेहूंकी बोरी है, वह एक चीज नहीं अनेकों गेहुंओंका पुञ्ज है। गेहूं एक एक है वह तो पूरी है। वस्तुतः उसका गेहूंका दाना एक चीज नहीं है, क्योंकि वह भी अनन्त परमाणुओंका एक पिण्ड है। अगर किसीके टुकड़े हुए तो वह एक नहीं था, ऐसे देखो तो एक एक परमाणुका नाम द्रव्य है।

**भ्रम और अविनय**—अनेकोंके समूहमें एकका भ्रम करके इसीमें जीव ममता करता है। बिखरने वाला बिखर गया, आत्माकी और शरीरकी दुकान अलग-अलग है, इन दोनों के कार्य भी अलग-अलग हैं, दोनोंमें पार्टिशन भी नहीं है। आत्माका व्यापार आत्मामें और शरीरका व्यापार शरीरमें चलता है। शरीर तो बेवकूफ बनता नहीं, क्योंकि वह अनजान है, पर आत्मा बनती है, क्योंकि वह जानती हुई भी मोहजालमें फंसती है। शरीरका कार्य अनन्त

परमाणुओंके रूप, रस, गंध, स्पर्श गुणके परिणमनसे चलता है; परन्तु आत्माका कार्य जीवमें चलता है तो जो ऐसा जानता है वह अच्छा नहीं है। ऐसे बेवकूफ जीवोंसे तो अजीव अच्छा। अजीव पदार्थ कभी आकुलता नहीं करता, इसलिए यह अच्छा है, न कि आकुलता करने वाला। अपने-अपने स्वभावके अनुसार पदार्थका एक-एक परमाणु द्रव्य है। हम जिन भगवान का पूजन करते हैं उनके गुणोंको तो देखते नहीं हैं, हमें उनके गुणोंको देखना चाहिए। हम रागतानमें मस्त रहते हैं। दूसरोंकी कला देखते हैं, नाचना देखते और हाव-भावोंको देखते हैं, उसकी आवाजकी ओर ध्यान लगाते हैं, यह तो अज्ञानता है। मन्दिरमें हम अपना ध्यान भगवानके गुणोंकी ओर न लगाकर यहाँ-वहाँके ऊपरी आडम्बरोंकी ओर लगाते हैं, यही सबसे बड़ी अविनय है। घरमें रहते तो यही सोचा करते कि यह अच्छा है, यह बुरा है, यह हमारा है, यह परका है, उससे ममत्व लगाये रहते हैं, यह भूल है। इस प्रकार विचारते, ममत्व भावनायें करते रहते, जिन्दगी भर यही गाड़ी चलती रहती है, पर एक बार भी ख्याल नहीं आता है कि यह सब जाल झंझट मिथ्या है। इस संसारमें अपना शरीर तक अपना नहीं तो फिर दूसरा कौन अपना है? तेरहवें गुणस्थानमें अनन्तवीर्य, अनन्त सुखोंकी प्राप्ति होती है वैसी प्राप्ति हम भी कर सकते हैं, पर उस चीजको पालनेकी कोशिश नहीं करते हैं, करें कहाँ से? क्योंकि बुद्धि तो ममत्व परिणाममें रंगी हुई है।

**रागविधिमें आत्मलाभका अभाव**—भैया! बाह्य पदार्थोंकी प्राप्तिकी बात तो बहुत मुश्किल है करना, पर यह तो करना कोई कठिन नहीं, जो हमारे भगवान महावीर स्वामी या श्री ऋषभदेव कर गये। जो वाणी उनके शब्द परम्परासे चले आये हुए हैं, उसपर विश्वास करना और उस रास्तेपर चलना भी साक्षात् भगवानका स्वरूप पानेके लाभसे कम नहीं है। फिर भी देखनेमें आता है कि प्रायः किसीकी भी उसके ऊपर उनके वचनोंपर रुचि नहीं है। किसीको विश्वास कम है, जो कुछ है तो उसमें भी आदर नहीं है। सिवाय मन कषाय भाव के और कुछ नहीं है। अगर कोई भजन अच्छे रागसे गा रहा है तो कहेंगे एक और भजन हो जाने दो। एक आदमी भगवानके रागमें मस्त होकर रागसे अगर भजन गाता है तो उसे चार आदमी कैसी शान्ततासे सुनते हैं? इसपर दृष्टि हो जाती तो क्या इन लोगोंकी भगवान के प्रति दृष्टि होगी? पर इतना होनेपर भी उनसे कहेंगे तो कुछ बुरा भी होगा क्योंकि जो घरपर बैठे गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, राग रंगरेलियोंमें मस्त हैं, उनसे अच्छे तो ये हैं। उनके अंदर भी ऐसे विचार आवेंगे कि उनसे हम कुछ अच्छे तो हैं जो थोड़े समयके लिए भगवानकी स्तुति में अपना भाग दे रहे हैं। पर फिर भी सोचेंगे कि हमारे स्वरमें ऐसी आवाज है कि जिस प्रकार २०-२५ आदमियोंके स्वरोंमें तो सब एक साथ एक ध्वनिसे बोलें और जितनी हमारे

बोलनेकी गति है उसी स्वरसे बोला जा रहा है तो वह सुन्दर प्रतीत होगा। इस प्रकारकी पार्टीमें हमारा ध्यान दूसरोंके प्रति बहुत ज्यादा रहता है। उस समय हम भगवानके प्रतिसे दृष्टि हटाकर वहाँपर ध्यानको ले जाते हैं—यह भूल है और इसी कारण धर्मव्यवहारमें भी आत्माको शान्ति नहीं मिलती है।

**सम्यक्ज्ञानके बिना असिद्धि**—अन्तःस्वरूप देखो, सम्यग्दृष्टि कौन है ? जो एक पदार्थको एक देखे वह सम्यग्दृष्टि है, क्योंकि अनेकोंको एक देखनेसे ममता बढ़ती है। शरीरके एक परमाणुके स्थानपर अनन्त परमाणु भी हैं, फिर भी प्रत्येकके स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं। जिस जीवके अन्दर स्वतंत्रताकी प्रीति बैठ जाय, उसे ही शान्ति मिलेगी। सम्यक्ज्ञान होना ही एक शान्तिका मुख्य अंग है। देखनेमें ज्ञानकी पूजा छोटी है पर उसका महत्त्व बहुत बड़ा है। तुम तप करो, अनशन करो, गर्मीमें पहाड़के ऊपर महीनाभर तपस्या करो, पर जब तक ज्ञान नहीं हो एकाग्र ध्यान न हो, चित्तको शान्ति नहीं मिल सकती, तब तक जप तप सब व्यर्थ हैं। अगर ज्ञानीको ऐसा तप हो जाय तो उसे मोक्ष तक बढ़ानेका कारण है।

**व्यर्थ मायामद**—शरीरको देखकर यह मद करना कि मैं रूपवान हूं, मेरा शरीर मोटा है, पतला है, मैं बलवान हूं, किसीसे भी नहीं डरूंगा, मैं बूढ़ा हूं, इस प्रकारके विचार करना मिथ्या है। यह शरीर तो परमाणुओंसे मिलकर बना है और बिखर जाने वाला है, माया वाला है, फिर ऐसे शरीरसे ममत्व बुद्धि क्यों करता है ? अहा ! संसारमें मोहजालका ही दुःख है। मान लीजिए तुम्हारे यहाँ जो पैदा है, अगर यह जीव नहीं आता, उसकी जगह दूसरा जीव आता तो तुम्हारी उससे ममता तो नहीं थी, फिर क्यों उस लड़केसे इतनी ममत्व बुद्धि रखते हो ? उसी प्रकार यह शरीरका भी हिसाब है। उस पुत्र शरीरसे ममता होना एकको एक जानना नहीं है। जो उस शरीरके परमाणु हैं वे अनंत मिलकर एक रूप बने हैं। उसे अपना शरीर है, हम यह मानते हैं, पर वह तो भिन्न है। इस प्रकारके भ्रममें जीव पड़ा है।

**एकत्वदृष्टिमें लाभ**—एक कितना है ? यह देखो जब दीपककी ज्योति होती है उससे वहाँका सारा अन्धेरा नष्ट हो जाता है, क्योंकि उसकी किरणें सारे प्रदेशमें फैल जाती हैं और अन्धकारपर अपना कब्जा जमा लेती हैं। उनमें इतनी शक्ति है; पर अपने तले अन्धेरा ही रहता है। यही परोपकारका बड़ा अच्छा नमूना पेश है। देखो यहाँपर पुत्रसे बापका, स्त्रीसे पुरुषका, मातासे बच्चेका, घर वालोंका, कुटुम्ब परिवारसे मित्रोंका, दोस्तोंसे रिश्तेदारोंसे अपना कोई सम्बंध नहीं, परिचय नहीं है। इतना होनेपर फिर उससे हमें क्यों ममत्व होता है, उसमें कौनसा तत्त्व है ? इस ओर भले ही दूसरेकी दृष्टि न जाय, पर हमें विचार जरूर करना है, सोचना है। कभी दृष्टि भी ठीक हो जायगी व आचरण भी ठीक हो जायगा। यदि अज्ञान भावमें रहकर धर्मके नामपर कुछ भी करोगे तो न कुछके समान है। तुम बड़े-बड़े धर्म कर

डालो, पर ये क्रोध, मान, माया, लोभ जो सताने वाले हैं, उनको नहीं छोड़ा तो सब व्यर्थ है। अगर तुम्हारे पास धन नहीं है, दरिद्रता है, गरीबी है, तुम दुःखी हो, किसी भी संकटमें फंसे हो, अगर तुम्हारे पास क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं तो अपरिमित सुख शान्तिको पा लोगे। जहाँपर ये सब हैं और पैसा भी हो, सब बेकार हैं, क्योंकि ये चारों ही सताने वाले हैं, अतः इनको छोड़ना जरूरी है। यहाँपर बैठे हैं तो अकेले ही हैं, घरपर हैं तो अकेले ही हैं, मित्र-मण्डलीमें बैठे हैं तो भी अकेले हैं। कोई किसीका नहीं है, कोई भी किसीके साथ नहीं जाता है। यह सब मानना मिथ्या है कि यह मेरा है, मैं इसका हूं। इस तरहसे शोक करना भ्रम है कि यह लड़का मेरा है, उसके दुःखी होनेपर दुःखी सुखी होनेसे सुखी दुःखी होना। जब कि शरीर और आतमा (जीव) का कार्य एकसा नहीं है। शरीरका अलग और जीवका अलग है, फिर इस संसार (जगत) को क्या पूछना ? वह भी एक चीज नहीं हो सकती है।

**आत्माकी विविक्तता**—कवि श्री भूधरदासजी ने कहा भी है—'जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।' जब कि देह ही अपनी नहीं है तो फिर दूसरोंका क्या विश्वास करना कि ये मेरे हैं। इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना कि जहाँ याने मरनेपर घर भरमें शरीर अपना नहीं रहता है वहाँ अपना कोई नहीं है और घरमें तो सब कोई हैं (हंसी), यह तो व्यावहारिकता है। कहनेका मतलब यह है कि देह और शरीरका व्यापार अलग-अलग है, अतः आतमा और शरीरका कोई सम्बंध नहीं है। इसलिए परपदार्थ तो प्रगट पर हैं, कुछ भी अपना नहीं है। हमें 'पर मेरा कुछ है' ऐसा मानना भी नहीं चाहिए, क्योंकि हमें तो आत्मासे सम्बंध जोड़ना है जिससे कल्याण हो। पुत्र पुत्रादिक तो क्षणिक दिखनेके ही हैं, यह पानी जैसे बुदबुदे हैं। अतः परपदार्थसे मोह मिथ्या है। दर्शनमार्गणा, लेश्यामार्गणा, कषायमार्गणा, ज्ञानमार्गणा आदि तो आत्माके कार्य हैं और शरीरका दुबलापन जीर्ण, जवान रूप रंगमें गोरा, काला, चमकदार, कांति वाला, दिखनेमें मोटापन—ये सब शरीरके कार्य हैं। इन सबका शरीर अलग-अलग है। दोनोंका किसीसे भी सम्बंध नहीं है। अगर हमें भूख लगी, ठंडी लगी, प्यास लगी, यह पुत्र अपना, घर हमारा, कपड़े हमारे, इस तरहकी समस्त ममता शरीरसे ही है और हमें इज्जत मिली, मान मिला आदि भी शरीरकी ममतासे ही है।

**एकत्वदृष्टिसे संसरणका अभाव**—शरीरमें चैतन्यपनेका स्वरूप लिये जो आत्मा विराजमान है उसको कौन जानता ? अपनी परख न होनेसे ही तो ये भाव होते हैं कि मेरा अपमान हो गया है। किसने किया है, क्यों किया है ? शरीरके बगैर संसारमें रुलानेका कार्य नहीं चलता है। संयम भी शरीरके रहनेपर ही होता है, बगैर शरीरके नहीं हो सकता है, परन्तु आत्मामें दृष्टि लगानेसे ही तो संयम होगा। जब शरीरसे दुःखकारी ऐसी प्रवृत्ति होती है तो फिर क्यों शरीरसे ममता रखता है ? परपदार्थ भिन्न हैं, उनसे हमारा कोई सम्पर्क नहीं है।

मनमें यह विचार आये और फिर परपदार्थसे विविक्त निज आत्मतत्त्वमें रम जाये कि इस शरीरसे छुटकारा मिल जावे, फिर कभी भी इस शरीरमें न आना पड़े, ऐसा ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए। शरीरमें शरीर परिणमता है, यह शरीर अनंत परमाणुओं वाला है। अगर तुम इस तरहके विचार अपने मनमें धारण करके अन्तरचर्यामें ही चलाते रहोगे तो तुम भी सिद्ध भगवान हो जावोगे। शरीर जुदा है, यह तब समझमें आवेगा जब प्रत्येक पदार्थका स्वरूप जुदा-जुदा समझोगे। जब इस प्रकारकी दृष्टि हो जावेगी एक-एक चीज एक-एक परमाणु है उस दिन शरीर जुदा और जीव जुदा है, यह अच्छी तरहसे समझ जाओगे। जब शरीरके एक-एक परमाणुको भिन्न माने रहोगे तब यह भी रहेगा उसकी निगाहमें कि शरीर बिखर गया। जिस उपयोगमें स्वतंत्र परमाणु दिखें उस उपयोगमें शरीर बिखर गया। जिसके उपयोग, निगाहमें सही एक-एक हैं उसको किससे ममता हो, किससे प्रेम करे वह ? इस बार-बार के अभ्यासके भीतरकी ज्योति मिलेगी।

**अखण्ड पदार्थ और उसका परिणमन**—जो एक-एक अखण्ड है वह एक-एक पदार्थ एक-एक चीज है। अनन्तानंत पुद्गल, एक आकाशद्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असंख्यात कालद्रव्य पदार्थ हैं। ये पदार्थ स्वतःसिद्ध हैं, किसीने भी बनाये नहीं हैं, अनादिसे चले आये हैं। इनकी खास विशेषता हरदम परिणमनशील है। इस कारणसे प्रत्येक पदार्थकी कोई न कोई दशा है। जीवकी कोई न कोई अवस्था रहती है, वह प्रति समय जुदी-जुदी है, उसमें रहने वाला जीवत्व एक है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल सबकी अवस्था भी जरूर बदलती है। जो पहली अवस्था है वह नहीं रहती, दूसरे परिणतिमें उसका परिणमन हो गया है, होता रहता है। जो अवस्था पहले समय थी वह दूसरे समय नहीं हो सकती है। हाँ, शुद्ध द्रव्यमें अवस्था सदृश समान होती है, विसदृश नहीं हो सकती है। जैसे स्कन्धोंकी दशा विचित्र-विचित्र परिणमनरूप विसदृश अवस्था हो जाय, संसारी जीवकी अवस्था क्रोध, मान, माया, लोभ हो जाय, किन्तु भगवानकी सदृश अवस्था सदैव है, वह तीनों लोक काल जो पहले समय में है वह दूसरे और तीसरे समय भी चौथे समय भी रहेगी। लेकिन कालकी जो अवस्था है उसमें परिवर्तन होता जाता है। जैसे आज जो अवस्था है वह एक मिनट पीछे नहीं रह सकती, उसमें परिवर्तन आ जावेगा। देखिये प्रभुमें उत्पाद और व्यय इन दोनोंका एक साथ रहना और भगवानका भी परिणमन होता, किन्तु इसमें यह कहा नहीं जा सकता कि कैसा परिणमन होता है ? जो पहले समयका परिणमन वही दूसरे समयमें दूसरा हो जावेगा तो यहाँ तक इतनी बात जानना कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है और परिणमन करने वाला उसका स्वरूप है।

**शुद्ध और आन्तरिक परिणमनमें परिवर्तनकी अगम्यता**—एक सेकेण्डमें असंख्यात

समय होते हैं, ऐसे सब समयोंमें शुद्ध द्रव्यका भी परिणमन होता रहता है। जैसे एक बिजलीका बल्ब लगातार एक घंटेसे जल रहा है। मान लो जब वह १० बजे जला तो उसने वही प्रकाश किया, ७ बजकर एक मिनटपर वही प्रकाश, इसी तरह चाहे दस मिनट बाद भी उसे देखो तो प्रकाश ज्यों का त्यों रहेगा, पर उसकी अवस्थामें परिणमन अवश्य होता जाता है। अगर इन दोनों अवस्थाओंमें तटस्थता आ जाय तो काम भी बन्द पड़ जाय। इसी प्रकार एक गोला है लोहेका, तुम उसे हाथमें ले लो, पर दूसरा देखने वाला यही सोचेगा कि तुमने क्या किया ? पर परोक्षमें देखो सोचो तो प्रत्येक समय अलग-अलग अवस्था होती रहती है। जैसे उसने आठ बजे गोला लिया पर आठ बजे जो ताकत उसने लगाई है उसके बाद आठ बजकर १ मिनट पर उससे ज्यादा ताक़त लगेगी। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। उसी तरहसे तुम अपने मकानको ले लीजिए जिसे तुमने आज बनाया है। उसको ५ साल बाद देखोगे तो वह तुम्हें दिखाई नहीं देगा कि उसमें क्या परिवर्तन हुआ है, पर उसकी अवस्था अवश्य ही बदलती रहती है। यहाँ तक यह बात जानली कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। जो पदार्थ आज दिखाई देता है वही कल भी दिखेगा, पर उसकी अवस्थामें अन्तर अवश्य आ जावेगा। इसी तरह इस शरीरकी हालत है। जो पहले हमारे परिणाम थे वे इस समयमें नहीं हैं। परिणामोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। यह परिणमन अनादिसे अनन्त समय तक चलता रहेगा और चला आ रहा है। जिन चीजोंकी सिर्फ अवस्थामें परिणमन चलता रहेगा वह चीज ज्योंकी त्यों रहेगी। इससे यह सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है।

**सामान्य और विशेष दृष्टि का परिणाम**—जिसके क्रोध, मान, माया, लोभ परिणाम ऐसे ही रहे वह हमेशा दुःखी रहेगा, कभी भी उसकी उन्नति नहीं हो सकती है। उदाहरण कि आम एक है उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ बदल जाती हैं। पहले वह छोटा था फिर बड़ा हुआ, आखिर फिर पक गया नीचे गिरा पर कौन गिरा ? आम वही जो पहले था। उसकी अवस्थाओंमें परिवर्तन हो गया है। इसी तरह पदार्थमें दशा एक हर समय बदलती रहती है। मगर पदार्थका स्वरूप सत्य ही नजर आयेगा। क्योंकि दृष्टिसे अलग-अलग नजर आयेंगे। पदार्थको देखनेके दो तरीके हैं। जैसे यहांपर २० आदमी बैठे हैं ऐसे समयमें एक आदमी आता है उसे किसी खास व्यक्तिसे कार्य है तो उसकी निगाह उसी आदमी पर है तथा उन उन्नीस आदमियोंपर नहीं है। अतः यह भी है कि कोई उनमें से एक सज्जन है तो उसकी दृष्टि शुद्ध है उसीकी दृष्टि भगवान्के स्वरूपको समझनेकी ओर जावेगी। उन्हीं आदमी में एक आदमी ऐसा है जिसको सबसे मतलब है वह सबको एकसा देखेगा। पर वह पहले वाला सिर्फ जिस आदमीसे कार्य है उसे ही देखेगा, अन्य आदमियोंसे उसे कोई मतलब नहीं है। पहला पर्यायकी दृष्टिसे देखेगा क्योंकि उसे एकसे कार्य है तथा दूसरा द्रव्यदृष्टिसे देखेगा

क्योंकि उसे सबसे कार्य है तथा समान दृष्टि भी उसकी है, अतः किसी भी प्रकारसे उसमें बाधा नहीं है। ये दोनों अवस्थाएं ही पर्याय हैं। द्रव्यदृष्टिसे सामान्य विशेषसे पर्याय ही है। जीवमें जो विशेष पर्याय हुई वही विशेषमें, जिसमें जो चीजें उत्पन्न हुईं वे सामान्यमें नहीं हुईं।

**सामान्य दृष्टिका महत्व**—जगत्में हमने विशेषको जाना पर सामान्यको नहीं जाना। जब तक सामान्यको नहीं जानेंगे तब तक मिथ्यात्व ही रहेगा। विशेष हैं पर सामान्यकी खबर ही नहीं है। अनादि अनन्तद्रव्य क्या होता है ? जगत्के पदार्थ दुनियाको जाननेमें आये पर विशेषमें उस सामान्यकी जरूरत थी जिसकी कुछ खबर ही नहीं रही। वस्तुका असली रूप देखनेके लिए सामान्यकी जरूरत पहले है बादमें विशेषकी। जैसे आप हैं एक, पर आपकी अवस्थायें हमेशा ही बदलती रहेंगी। हम अनादि कालसे एकसे रहे हैं, रहेंगे और रहते जावेंगे, पर अवस्थायें ही बदलती रहती हैं। प्रतिसमय हमारेमें क्रोध, मान, माया, लोभकी परिणति तो रही है। यह विशेषका ही कारण है जो हम बाहरी आडम्बरको ही मानकर चल रहे हैं। पदार्थ स्वरूपके विशेष मानकर अशान्ति मानता है व सामान्य मानकर शान्ति मानता है। जितने बाहरी पदार्थ हैं सब दुःखके देने वाले हैं, इनको मोही अपना मानता है। सामान्य, विशेष—ये दो दृष्टि पदार्थ देखनेकी हैं। जैसे किसी भी चीजको बाईं आँख बन्द कर दाहिनी आँखसे देखिये तो वही फिर दोनों खोलकर देखिये, फिर दाहिनी मींचकर देखिये तो वही बाहरी रूप दिखेगा। लेकिन जब दोनों आँखें बन्द करके देखोगे तो असली रूप दिखाई देगा। यही स्वभाव है। पदार्थोंके जाननेके चार उपाय हैं—सामान्य, विशेष, सामान्यविशेष, अविशेषसामान्य। सामान्यसे पदार्थ नित्यस्वरूप नजर आवेगा और विशेषसे बाहरी रूप नजर आवेगा। विशेषसे अभेद ध्रुव न दिखेगा। विशेष परिणाम, परिणमन भेदकी अपेक्षा है। सामान्यमें विशेष लगाओ तो परिणाममें विकलता आ जावेगी। अगर दोनों नयोंको बंद करके देखोगे तो निर्विकल्प क्षोभरहित अवस्था रहेगी। ये पदार्थोंको जाननेकी तरकीब है।

**आत्मसावधानीसे जीवनकी सफलता**—मनमें ऐसा उत्साह लाना चाहिए जो होगा, देखा जावेगा किसीकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। किसीके लिए क्यों रंज करना, किसीपर क्यों मोह करना ? यह सब स्वार्थपरताके कारण ही दिखाई देते हैं। मैं एक चिदानन्द आत्मस्वरूप का ही ध्यान करूंगा ऐसा विचार करें। यह सब ज्ञानका ही बल है जो हम प्रत्येक पदार्थको जान सकते हैं। अज्ञानीको बोध कहांसे हो सकता है ? जैसे मुनि जंगलमें जाकर कठिनसे कठिन तप करते, यह सब कर्मोंका नाश करनेके लिए। यदि अन्दर उनको ज्ञान नहीं तो कैसे करें ? फिर सब व्यर्थ जावे। जैसा तुम परिणाम करोगे वैसा ही तुम अपने आप पाओगे। आप भी जो चतुर आदमी हैं, जिसपर आपका बस नहीं चलता उसे आप पानेकी कोशिश क्यों करते हैं ? उसीमें अपनी चिन्ताको क्यों लगा देते हैं, जैसे कि धन कमानेमें तुम्हारा बस

नहीं है। यह तो भ्रम है। तुम समझते हो कि मैं कमाता हूं, ज्यादा कमा लूं, धनवान् बन जाऊं और दूसरेसे ज्यादा कमा लूँ, इस प्रकारकी प्रवृत्ति है, यह भ्रममूलक है। पूर्व भवमें जो बात उद्देश्यकी थी वही इसी समय प्रगटमें काम आई, अतः उस उदयके अनुसार यह व्रत है ज्ञानावरणने जानने नहीं दिया। जानकारी बढ़ानेमें हितकी बातमें जानकारी लगा दे ना, जिस पर बस चले वह काम करो तो पूरा पड़ जावेगा। नहीं तो समय और व्यर्थ जावेगा। कोई समय ऐसा आवेगा कि बड़े-बड़े भी मृत्युमुखमें पड़ेंगे किसी समय। इसको भी किसी समय मृत्युका ग्रास बनना पड़ेगा। उस यातायातगमनमें सुखका अनुभव करना, आकिञ्चन्यभावसे गुजर करना, आराम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे रामचन्द्र जी ने जंगलमें बेर खाकर दिन बिताये इसीलिए अयोध्या वाले उन्हें पूजते हैं। एक राजकुमार होकर आज्ञाका यों पालन किया तथा कठिन दुःखोंको भी सुख मानकर प्रतिज्ञा पूरी की, पिताकी आज्ञाका पालन किया। अगर खुदमें आत्माका स्वरूप रहा तो मनुष्य जीवन सफल हो सकता है। सारी वस्तुएं सामान्यविशेषात्मक हैं। सामान्य द्रव्यार्थिक दृष्टिसे विशेष पर्यायार्थिक दृष्टिसे ज्ञात होता। दोनों का काम बन्द कर दिया तो अपने-अपनेमें नामरहित चैतन्यस्वरूप दिखेगा। उसीको देखनेमें आनन्द है।

**आत्मस्वरूपकी दृष्टिमें परेशानीकी समाप्ति**—रुड़कीकी एक घटना है कि मन्दिरमें एक अजैन स्त्री हमारे पास आई और अपनी दुःखोंकी गाथा सुनाने लगी कि मैं कुछ नहीं कर सकती हूं, क्योंकि मैं स्त्री हूं, मैं उन्नति नहीं कर सकती। धर्म करनेमें शर्म आती है, चार आदमी नाम रखते हैं। तब मैंने कहा कि तुम स्त्री हो, इस प्रकारका तुम्हें भ्रम है। कौन कहता है कि तुम स्त्री हो, तुम स्त्री नहीं हो। उसने कहा कि यह कैसे समझा जाय कि मैं स्त्री नहीं हूं। मैंने कहाँ शरीर, जीव दो न्यारे-न्यारे हैं, फिर तुम शरीरमें अहंबुद्धि लगाकर यह कहती हो कि मैं स्त्री हूं। तुम तो जीवमें अहंभाव रक्खो तो फिर कभी भी यह नहीं कहोगी कि मैं स्त्री हूं। जीव कभी न पुरुष होता, न स्त्री होता है, क्योंकि आजकलके जमानेमें भी स्त्रीवेदी पुरुष हो सकता है और पुरुषवेदी स्त्री हो सकता है। तो फिर क्यों ऐसी तुम धारणा करती हो कि ये पुरुष हैं, मैं स्त्री हूं। यहाँपर इतने आदमी बैठे हैं, उनमें न जाने कौन पुरुष है, कौन स्त्री है और इतनी स्त्रियोंमें न जाने कौन स्त्री है और कौन पुरुष है? यह सुनकर वह स्त्री खुश हुई और बोली कि आपने ठीक कहा, मुझे बहुत अच्छा लगा है। अगर इसी तरहसे प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी बातोंका स्पष्टीकरण करके समझने लगे तो इस संसारसंकट से हमेशाके लिए छुटकारा पा जावे।

**वक्तव्यकी मंगलाचरणमें झांकी**—इस ग्रंथमें जो मंगलाचरण है उसमें किसे नमस्कार किया गया है? जो कि सर्वमें व्यापक है एक चैतन्यस्वरूपमय जो परमात्मा है, उसको नम-

स्कार किया। सिद्ध परमात्मा है वह तो कार्यपरमात्मा है उसको नमस्कार नहीं कर सकते। क्योंकि वह उसकी जगह है, हम दूसरी जगह हैं जो कुछ हम कर सकते हैं अपना कर सकते हैं परमात्माका नहीं कर सकते। हम दूसरेकी पूजा कर लेते, यह सोचना, विचारना भ्रममूलक है। दूसरा पदार्थ जो श्री कार्यपरमात्मा है वह अनंतवीर्यवान अनंतसुखसम्पन्न है। सो उससे तो भगवान अपने लिए सुख भोग रहे, न हमें कुछ देते हैं, न लेते हैं। हम ही अपने कर्ता हैं, भोक्ता हैं, कोई किसीका नहीं है, कोई किसीके लिए नहीं करता है। जो कुछ करता है वह अपने लिए ही करता है, भगवानका पूजन नमस्कार हम खुदके लिए करते हैं, न कि भगवानके लिए करते हैं। भगवानका हम कुछ करते, यह मानना भूल है। जैसे कि लोग समझते हैं कि परमें हमने यह किया, यह उनकी भूल है। उसने तो सिर्फ वहाँ भगवानके बारेमें अपना विचार बनाया और कुछ नहीं किया, इससे आगे रंच भी उसने कुछ नहीं किया। जहाँ भावों में इतनी कोमलता विनयशीलता है वहाँ कोमल परिणाम बनाया, हमने अपना विचार भाव व्यक्त किया। भगवानका उपयोगमें आश्रय करके हम गुणविकास करें, यह तो हमारी कला है। हमने भगवानको नहीं पूजा, मात्र अपने आपको पूजा। उसे शुभ अर्थात् अच्छे भाव कहते हैं।

**ध्रुव तत्त्वकी आस्थामें विकास**—अपने आपमें विराजमान जो शुद्ध चैतन्य है उसे जाननेकी कोशिश करो, जिससे आत्मकल्याण हो। जीवका स्वरूप भी चैतन्यस्वरूप है जो इस समयकी अवस्थासे विलक्षणस्वरूपी है, सामान्यरूप है। जो अध्रुव रहता है वह विशेष है। यहाँ विविध विशेष रहते हुए भी विशेष परिणति द्वारा सामान्यस्वरूप निज कारणपरमात्माको नमस्कार किया गया। यह चैतन्यस्वरूप है, उसको देखा जा रहा है, परमात्माको कोई बनाया तो जाता नहीं है। अज्ञानमें रागादि भाव आत्माके अन्दर उत्पन्न होते ही हैं और ज्ञान होने पर स्वभाव विकास बढ़ता ही है। स्वभाव शक्तिरूप भावसे बाहरी रूप बाह्योपयोग रूप जो है वह स्वभावसे निकलनेका रूप है, वहाँ परमात्मा है ही नहीं। अगर अपने आपके बारेमें यह निर्णय हो जाय कि मैं परमात्मस्वरूप वाला हूं तो परमात्म शक्तिकी प्रतीति वाला वह अपने शुद्ध स्वभावका आश्रय करके शुद्धविकास कर लेगा।

**बेवकूफीमें फजीहत**—ये तो सब पुण्यपापके वैभव ठाठ हैं, उनपर रीझना विडम्बना है। जो रीझे वह मूर्ख है व विपत्तिको बुलाता है। एक समयकी बात है कि एक महाशय थे, उनका नाम बेवकूफ था और उनकी श्रीमती जी का नाम फजीहत था। उन दोनोंमें आपसमें कभी-कभी बनती नहीं थी। किसी तरहसे एक दिन दोनोंमें ज्यादा झगड़ा हो गया तो श्रीमती जी वहाँसे चल दी। थोड़ी देर वाद उनके पतिने उनकी तलाश की, तो वे बेवकूफ जी जहाँ भी जिससे पूछे कि हमारी फजीहत देखी तो उस चीजको जो आदमी जानते थे उन्होंने कह

दिया कि नहीं देखी। पर एक अनजान आदमीसे मौका पड़ा। उसने कहा कि भैया! हम बात समझे नहीं, आपका क्या नाम है? वह बोला—मेरा नाम बेवकूफ है तो वह पथिक बोला कि बेवकूफ होकर कहाँ फजीहत ढूंढ़ने जाते हो? बेवकूफको तो जगह-जगह फजीहत मिलती अथवा बेवकूफी स्वयं फजीहत ही दिखाई देती है वह तो सब कर्मोंका खेल है। वह अपरिचित पुरुष अनभिज्ञ था, उसे यह मालूम नहीं था कि फजीहत उसकी स्त्रीका नाम है। इसी प्रकार अपना दुकानका कार्य होता है, उसमें यदि हमें ज्यादा नफा होता है तो हम मान बैठते हैं कि आज हमें कुछ लाभ हुआ है। वह यह नहीं जानता कि अज्ञानभावमें तो यह सब विपदाका काम करती। अगर हमें दुकानमें टोटा पड़ गया तो हम उसमें अज्ञानताके कारण दुःख मान लेते हैं, यह हमारी भूल है। उसी प्रकार पुत्र आज्ञाकारी है तो सुख मान लेते हैं और आज्ञाकारी नहीं है तो दुःखका अनुभव करते हैं। अज्ञानता जो है वह बेवकूफी है, मिथ्या व असत्य है।

**प्रभुका अनुकरण प्रभुपूजा**—यहाँ तो दुःख काल्पनिक चीज है। हम ऐसी कल्पनायें करते हैं कि हाय वह कैसा धनी हो गया है, हम उससे गरीब हैं। हम क्या धनी हैं, हमसे भी ज्यादा धनी इस दुनियामें दूसरे आदमी पड़े हुए हैं, इस लड़केको ज्ञान कब आयगा, कैसे जिन्दगी बितायेगा आदि अनेक प्रकारकी कल्पनाएं मानस आगारमें उठती रहती हैं। अगर हमें ज्ञान हो जाय तो हम अपनी आत्मा जो चैतन्यस्वरूप वाली है, उसीके गुणोंकी ओर अपनी शक्तिको लगावें। मैं तो एक सामान्य स्वरूप हूं। अगर धनमें सुख होता तो भरत चक्रवर्ती, ऋषभदेव भगवान और शान्तिनाथ भगवानने फिर क्यों इस धनसे मोह छोड़ दिया है? मैं मनको अहितरूप नहीं मान सका और अपनी आत्माको हितरूप न मानकर परपदार्थों को मानता रहा हूं, यही संस्कार बेचैनी कर रहा है। जिसके ज्योति नहीं वह आदमी यही सोचेगा कि भगवान भी बेवकूफ है वह उनके गुणोंकी परख नहीं कर सकता है। वह भगवान के स्वरूपको नहीं समझ सकता है, फिर महत्त्व कैसे जाने? जिनको पूज रहे हैं उनको वैभव से अतीत जो न माने, वह भगवानके बारेमें यह नहीं सोच सकता कि भगवानने विवेकका अनुकरण किया है। इस दुनियामें कई लोगोंने भगवानको अन्यथा ही समझा है। कुछ विरले बुद्धिमान ही भगवानको मानते हैं, क्योंकि ज्योतिके अनुभव वालोंकी दृष्टिमें यही बात है कि उन्होंने कैवल्य अवस्था प्राप्त करके निर्विकल्प ज्ञानको प्राप्त किया है। भगवानकी पूजा भी कर लें और भगवानको नहीं समझ पायें, ऐसे भाई भी इस समय हैं।

**स्वदृष्टिमें स्वगुणविकास**—भैया! जब तक हममें गुणकी बात नहीं आती तब तक जरा भी दूसरेके तथ्य ज्ञात नहीं हो सकते, जरा भी दूसरेके गुण ज्ञात नहीं हो सकते हैं। जो गुणको नहीं जानते वे किसीको क्या पहचानेंगे? नहीं पहचान सकते हैं। आप जब भगवान्‌की

पूजा करते हैं उस समय मूर्ति चेहरा देखकर यह कहते हो कि भगवान् हंस रहा है तो तुम पहले यह सोचो कि तुम्हारे मनमें पहले कुछ प्रफुल्लता है, इसीसे तुम्हारे लिए ऐसा दिखाई देता है। कभी-कभी तुम्हें चेहरा रंजमें दिखता है उस समय तुम्हारा मन किसी रंजमें होगा अतः वह रंजमें दिखता है। कोई मनुष्य बहुत उदार है उसकी उदारताकी पहिचान सिर्फ वही कर सकता है जो खुद उदार हो, नहीं तो और कोई उसकी कदर नहीं कर सकता है। इसी तरहसे जो कुछ थोड़ा भी ज्ञानी होगा वही भगवान्के महत्त्वको समझ सकता है। यहाँपर जीवने सिर्फ विशेषका ही परिचय किया है, सामान्यसे कुछ भी सम्पर्क नहीं रक्खा है। सामान्यके अवलोकनके बिना विनाश है। उदाहरणके लिए एक अंगुलीकी अनेक अवस्थायें होती हैं, वही अंगुली सीधी भी, वही टेढ़ी भी हो जाती है तो अब यह बताओ जो सीधी है, टेढ़ी है वह या है सब एक ही चीज है, न कि अलग-अलग, सिर्फ उसकी अवस्थाएं अनेक व अलग अलग हैं। यह अंगुली तो एक ही है, इसे हम आँखोंसे नहीं देख सकते, उसे तो सिर्फ मनसे ही जान सकते हैं। इसी प्रकार सामान्य आत्मा इन्द्रिय व मनसे भी नहीं जाना जा सकता है। अगर एक सेकेण्डके दसवें हिस्सेमें भी आत्माका अनुभव हो जाय तो भी काफी है। मन और इन्द्रिय अपना कार्य बन्द कर दें ऐसी स्थिति अधिक देर तक नहीं रह सकती है। मनसे ज्ञानकी उत्पत्तिका प्रारम्भ है, किन्तु आत्मानुभवके समय मनका काम नहीं है। खिन्नीकी लकड़ी पोली होती है, उस लकड़ीसे दो टुकड़े कीजिये फिर उन दोनोंको इस तरहसे तिरछे जोड़ दीजिएगा कि वे एकसे दिखने लगें। फिर एक लोटा भर पानीमें डुबोकर उस लकड़ीके सिरेको मुंहके अन्दर रखकर ऊपरको सांस खींचिये तो उस लोटेका जो पानी होगा वह उस लकड़ीके द्वारा ऊपर आकर टपकता रहेगा। उस कार्यमें जो पहले क्रिया हुई है वह मुंहकी हुई, फिर बादमें पानी टपकनेकी क्रिया हुई है।

**सामान्यके आश्रयसे ही निराकुलताका अभ्युदय**—आत्माकी परीक्षा सामान्यपर विशेष के प्रयोग द्वारा होती है। मोहीने जो परिचय किया है वह परपदार्थोंसे किया है, उसने आत्मा से बिल्कुल परिचय नहीं किया है, अतः दुःखोंको भोगता रहता है। जो चिदानन्द आत्मस्वरूप आत्माका ध्यान करेगा वह एक दिन अवश्य ही उस परमात्माको अपनी ही आत्मामें पा लेगा। हम देखते हैं कि यह आदमी है, पर वास्तवमें वह खाली आदमी नहीं है, मनुष्य नहीं है। यह समझना भूल है कि वह मनुष्य है, क्योंकि देखनेमें आती है कोई न कोई अवस्था। जब हम बच्चे थे उसी समय हमें मनुष्य कहते तो फिर जवान होनेपर भी हमें मनुष्य क्यों कहा जाता है? अगर हम बच्चे ही आदमी होते तो फिर हम मिटते नहीं, बच्चे ही रहना चाहिए था। इसी तरह जवानसे बूढ़े हो गये तो हमें बूढ़ा कहने लगे, फिर मनुष्य कैसे रहे? नहीं रहे, क्योंकि वह मनुष्यपना कभी बदलना नहीं चाहिए था, क्योंकि वह तो एक है, जो चीज

सामान्यदृष्टि रहनेपर ही ग्रहणमें आ सकी है। इसी तरहसे स्थूल रूपमें मनुष्यका दृष्टान्त है। जीव असलमें क्या है ? मनुष्य है। तो फिर वह आगे जीव नहीं हो सकता है। देव, नारकी, पशु, तिर्यंच, भवोंमें रहने वाले जीव सामान्य अनादिसे अनन्तकाल तक एकसे रहते चले आये हैं और रहेंगे, फिर उन अवस्थाओंको ही जीव कहना भ्रम है। पर इतना होनेपर भी अवस्था प्रत्येक समयमें ही बदलती रहती है। व्यवहारमें पशु, नारकी, मनुष्य आदिको जीव कहना, क्योंकि ये जीवकी दशामें रहते हैं। दस तरहकी विशेषोंमें दृष्टि हो तो प्रत्येकके मनमें आकुलता रहती है। अतः यह कहना युक्त है कि उस चिदानन्दको पाये बिना विशेष विषयोंका भार ढोना पड़ेगा। भैया ! इस विडम्बनासे बचनेके लिए हमें उसके गुणोंको देखकर चलना चाहिए कि उसमें क्या ऐसा कार्य किया जाता है जिससे वह यहाँसे मुक्त हो सकता है ? हम करते क्या हैं कि बाहरी मायामें फंसकर जन्म मरणके दुःखोंका ही अनुसरण करते हुए कर्मोंको दोष देते रहते हैं। वास्तवमें अपनी भूलकी ओर ध्यान नहीं देते कि आखिर यह भूल मेरी है जो अपनी आत्मामें ध्यान नहीं लगाता हूं।

**शान्तिका प्रयोजक और विधान**—इस संसारमें हम शान्ति चाहते हैं तो ऐसा सोचें कि शान्ति किसे दिलाई जाय, कैसे दिलाई जाय ? इन बातोंको जाननेके बाद ही उसे शान्ति मिलेगी। शान्ति पानेके लिए हमें सबसे पहले यह जान लेना पड़ेगा कि मैं और गैर ये क्या चीज है ? इसीको जाननेके लिए मैं कोशिश नहीं करता हूं। जब मैं कौन हूं, ऐसा सत्य जान जाऊंगा तो अवश्य ही शान्ति पा लूंगा तथा आत्मा और अनात्मा क्या है ? साथ-साथ यह भी जानना पड़ेगा। मैं और गैर इन दोनोंमें मैं कौन हूं ? यही संकल्प-विकल्प मनमें उठते रहते हैं। मैं तो केवल एक है, पर गैर मैं अनेक हैं। स्वके देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि जीव का स्वरूप क्या है ? यह जीव अपने आपमें विराजमान शुद्ध चैतन्य ही मैं है। जीवका स्वरूप चैतन्य है, जो हर अवस्थामें रहता है, हर अवस्थामें सामान्य है। जो दिखने वाले ये पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं, ये मैं नहीं हूं, ये तो सिर्फ गैरमें ही हैं। ये प्रत्येक परमाणु हैं, एक-एक द्रव्य है, ये सब द्रव्य परमाणु अपने नहीं हैं तो फिर ये द्रव्य मेरे कहाँसे हो सकते हैं, ये तो केवल परिवर्तन ही हैं। आत्मा व अनात्मा है, अनात्मा कितनी है, यह जाननेके लिए समस्त जीवोंको कैसे हैं ? यह जानना ही पड़ेगा। जो मैं अपने बारेमें जानता हूं वैसे ही सब जीवोंके बारेमें जानना पड़ेगा। तब ही सब जीवोंका निर्णय हो सकेगा। माया मूर्तिपर दृष्टि रखकर कैसे अपना निर्णय हो सकता है ? वह एक चीज नहीं है, इन सब स्कन्धोंका समूह है।

**आत्मद्रव्यकी पर व परभावसे अत्यन्त विविक्तता**—एक धर्मद्रव्य सारे लोकमें फैला है और एक आकाशद्रव्य लोकाकाशके बाहर भी फैला है और एक अधर्मद्रव्य सारे संसारमें

फैला है। एक-एक कालद्रव्य एक-एक प्रदेशमें ठहरा हुआ है। पुद्गल भी यहाँ सर्वत्र हैं। जब ये एकक्षेत्रस्थ पुद्गल द्रव्य भी हमारे नहीं हैं तो फिर अन्य कैसे हो सकते हैं ? ये रागादि भाव तो हमारे विपरिणमन हैं वह भी मेरी चीज नहीं हैं। असंख्यात प्रदेशोंमें एक-एक जीवद्रव्य स्थित है उसमें रागादिक हैं, पर औपाधिक है। मैं और गैर मैं को जाननेपर ही यह मालूम पड़ेगा कि मैं एक चैतन्य आत्मा हूं। इस तरहसे मैं जो हूं गैर पदार्थोंसे अलग हूं, निर्विकल्प स्वरूप, ध्रुव निरपेक्ष हूं तो फिर पारिणामिक ध्रुव मैं क्या हूं ? इसपर विचार करें तो भेद-दृष्टिसे तो दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी सत्ताका महत्त्व, उनकी क्रिया ही अलग नजर आवेगी। इनकी शीलता परिणमन करनेकी है, ये परिणमन अपने नहीं हैं। इसी प्रकारसे जो आठ प्रकारकी ज्ञान व्यक्ति है वह भी हमारी नहीं है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवल-ज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुवधिज्ञान—ये आठ ज्ञान ही जब अपने स्वरूप नहीं हैं तो दूसरे क्या हो सकते ? ये तो सिर्फ ज्ञानके परिणमन रूप हैं। हाँ केवलज्ञान केवल ही है, इससे सिर्फ आनंद ही आनंद हो सकता है। एक समयके केवलज्ञानसे दूसरे समयका केवलज्ञाबका विषय पहलेका नहीं हो सकता है। इसकी इतनी शुद्धि है कि वह सदृश है। लोकमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो किसी भी दशामें परिणमनशील न हो अर्थात् सब जीव परिणमनशील हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, इनका जीवसे शाश्वत सम्बंध नहीं है। जीवमें अनेक परिणमन परिभ्रमण करते हैं, इन परिणामोंसे कोई परिणमन चारित्र दर्शनका है। जब ये भी हमारे नहीं हैं तो फिर दूसरी चीज मेरी कैसे हो सकती है ? जो २६ प्रकारकी कषायें मार्गणा हैं जैसे अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान, संज्वलन, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद और अकषाय, ये ही हमारे नहीं हैं तो फिर दूसरे आदमी परपदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं ? ये कषाय तो परिणमन रूप हैं। तुम्हें मालूम हो कि श्रद्धाके परिणाम औपशमिक क्षायिकभाव, मिश्रभाव ये भी हमारे स्वरूप नहीं, सिर्फ परिणमन रूप हैं तो फिर परपदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं ?

**सहज अन्तस्तत्वके अवलंबनमें सम्यक्त्वका अनुभव**—भैया ! कषायरहित मेरा स्व-भाव है वह एक निश्चल स्वतंत्र चीज है, किन्तु इतना होनेपर भी प्रति समयमें अकषायका परिणमन चल ही रहा है। उसकी परिणतिमें अनवरत ये अकषाय चलता है वह सब परिण-मन है, मैं तो ध्रुव तत्त्व हूं। जिससे ये आठ ज्ञानके भेद उपजते हैं वह हमारा स्वरूप है। जिसका चक्षुदर्शन आदि परिणमन होता रहता है यह पारिणामिक भाव है ज्ञानशक्ति दर्शन-शक्ति, चारित्रशक्ति आदि। उसे ही मैं अथवा मेरा है यह मानना तथा फिर सोचे—क्या मैं बिखरा हुआ जीव हूं जो मेरेमें अलग अलग प्रकार है ज्ञान अलग, दर्शन अलग, चारित्र अलग होता है और प्रत्येककी शक्ति मेरेमें आ करके मिल जाती है ? नहीं, वह समस्त ही एक अभेद

आत्मा है। समस्त शक्तिके अभेदरूप जिसको कह सकने वाले कोई वचन नहीं हैं वह एक स्वभाव है वह मैं हूं। अपनेको देखो तब मालूम पड़ेगा तुम्हारा स्वरूप क्या है ? जैसे तुम्हारा बच्चा है वह आपकी कल्पित कुटियामें है, किन्तु है तो भिन्न जीव, तुम उसे अपना मान बैठे हो पर यह भ्रम है। वह तुम्हारी कुटियामें रहता है, इसलिए तुम्हारा क्या है ? उसी प्रकार का दूसरा जीव भी समक्ष है जरा तुमसे थोड़ी दूर रहता है उसे अपना क्यों नहीं मानते हो ? अगर ये परपदार्थ अपने होते तो अपनेसे तन्मय होते। हमारे ये पूज्यपाद राम, हनुमान, भरत चक्रवर्ती सरिखे महाराजाओंने अपने सारे राज्यपाटपर लात मार दी तो फिर हम क्यों इससे लिपटे फिरते हैं, अगर ये हमारे होते और हमारी भलाईके लिए होते तो फिर इतने बड़े महाराजा इतने बड़े पुरुष राजपाटको क्यों छोड़ देते ? उन्होंने तो अपनी तीन खण्डकी विभूति तकको छोड़कर इस चिदानन्द आत्माका ध्यान किया है। उन्होंने इसे त्यागनेमें बिल्कुल हिच-किचाहट नहीं की है। जड़ पदार्थ मेरा कुछ नहीं है, हमें अपनी जड़को मजबूत बनानेके लिए सम्यक्त्वका आचरण करना चाहिए, नहीं तो यह जिन्दगी वैसे ही बीत जावेगी, कुछ भी अपना भला नहीं हो सकेगा। अगर हम ऐसा न करें तो भगवान्के सपूत कैसे कहे जा सकते हैं ? जब तक हम सहज अन्तस्तत्त्वका उपयोगमें धारण न करेंगे तो हमारा सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं जगेगा जिससे हमारा आत्मकल्याण होने वाला है। उस सम्यक्त्वको धारण करने पर ही हम भगवान्के सपूत कहे जा सकते हैं।

**यथार्थ परिचयसे आकुलताकी समाप्ति**—यहां पर एक मर्मकी कहानीके रूपमें उदा-हरणार्थ सुनें। एक आदमी अपने गाँवसे चला। चलते-चलते उसे रास्तेमें अंधेरा हो गया। वह दूसरे गाँव पहुंचनेकी तलाशमें था, पर अन्धेरा इतना तेज था कि वह दूसरे गाँवका जहाँ उसे जाना था रास्ता भूल गया, वह पगडंडीका रास्ता था। वह एक घंटे तक चला, फिर उसने सोचा कि अगर मैं ऐसे ही चलते रहूंगा तो पहुंच नहीं सकता। न मालूम कब तक चलना पड़े, कब वहाँ पहुंचूं ? रास्ता मालूम नहीं पड़ता, वह एक टीलेपर जाकर एक स्थानपर जाकर बैठ गया। उस समय वह बैठा तो था, पर उसके दिलमें वही घबड़ाहट थी कि वह कब अपने ठीक स्थानपर पहुंचेगा तथा वह अपना रास्ता कहाँ ढूंढ़ पावेगा ? इसी चिन्तामें मग्न था कि एकाएक बिजली चमकी और उसे वह सड़क व एक पगडंडी दिख गई जिसपर होकर उसे जाना था। वह बड़ा ही खुश हुआ और वह फिर आनन्दपूर्वक वहाँ पर सोया। अब उसे उस प्रकारकी कल्पना नहीं थी कि वह कब पहुंचेगा, कैसे पहुंचेगा ? उसकी आत्मामें शान्ति थी। वह सो गया रात भर चैनसे सोया, फिर सुबह उठकर वह चल दिया और ठीक स्थानपर जाकर वह पहुंच गया। इसी तरहसे यह जीव भी अज्ञानरूपी अंधेरेमें एक पगडंडीपर भटकता हुआ फिर रहा था। सोच रहा है कि क्या करूं, कहाँपर जाऊं, किस प्रकारसे जाऊं ?

पर उसी समय एक ज्ञानरूपी बिजली चमकी उसमें उसे अपना रास्ता दिखाई दे गया है। फिर वह उस मुसाफिरकी भाँति चला नहीं, वह क्या सोचता है कि यह रास्ता तो अपने पास ही है जब चाहे चल लूंगा, इसे कोई छीनने वाला नहीं है। यह ज्ञान होते ही संयमासंयमकी पगडंडीसे चलकर संयमकी सड़कसे चलकर मोक्षके समीप पहुंचता। अहो ऐसी शक्ति पाकर भी कोई मोहजालमें फंसा हुआ सोचता है—अभी सांसारिक सुखोंको भोगना पड़ रहा है, दुःखों को भोगना पड़ रहा है, किन्तु निकटमें कभी पासकी चीजका उपयोग करेगा, चीज पास हैं तो जब मनमें आयेगा तब उपयोग कर लेगा।

यह संसारी जीव मोह, रागद्वेष अज्ञान ममत्वमें पड़कर ही जीवनको व्यर्थ गंवा रहा है। सबसे बड़ा दुःख है मानसिक दुःख। जब तक यह दुःख नहीं मिटेगा तब तक किसी भी मनुष्यको शान्ति नहीं मिल सकती है। भैया! शान्ति पानेके लिए ममत्वबुद्धिको दूर करना पड़ेगा तभी हमारा कल्याण होगा। जिस रास्तेसे हमारे साधुगण चले आये हैं उस ही रास्ते पर हमें भी चलना चाहिए, जिससे आत्मकल्याण हो। जिससे ये जो संकट आते हैं वे नहीं आवें। विवेकी पुरुष विषयोंसे विराम लेता है। जब भी किसी उपदेशके द्वारा एक बिजली चमकी और उसने बताया कि तुम्हारा रास्ता वह है, पर तुमने उसे उपयोगमें नहीं लिया है। यह सब बाहरी पदार्थ क्षणिक हैं, जब समय ही क्षणिक होता है तो फिर परपदार्थोंकी तो बात ही क्या कहना है? इस मर्मके समझते ही संतोष हो जाता है। मिथ्यादृष्टिके अगर सम्यक्त्व व संयम हो जावे एक साथ तो उसके अप्रमत्तविरत गुणस्थान हो जाता है।

**स्वभावाश्रयसे उत्तरोत्तर विकास**—जहाँपर श्रद्धा व चारित्र गुणका कुछ भी शुद्ध-विकास नहीं है उल्टा ही परिणमन है ऐसे परिणामको मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वमें जीव शरीरको स्वयं मानता है। रागद्वेषादिक विभावोंसे भिन्न शुद्ध ज्ञायकस्वभावका परिचय नहीं कर पाता। जिस जीवके श्रद्धा निर्मल हो गई वही जीव अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि न होनेसे और रागके क्लेशको नहीं सहन कर सकनेसे तो अविरत गुणस्थानवर्ती होता है, उसके कोई भी व्रत नहीं हो सकता है। हाँ असंयमका क्लेश है। वह सोचता है कि मैं भूला हूं, पर मार्ग वह है उस सड़कपर पहुंचानेके लिए गुणाश्रय ही हमारी मदद करेगा दूसरा कोई भी नहीं कर सकता है। हम उस मार्गपर चलते हैं, पर उसपर एकदम नहीं चल सकते, धीरे-धीरे ही चल सकेंगे। धीरे-धीरे भी सही चलनेसे महाव्रत पर पहुंच जावेंगे। हम इस समय विषयकषायोंके क्रूर घोर जंगलमें पड़े हुए हैं और उसी घोर जंगलमें भटक रहे हैं। आगे जानेको रास्ता है, पर उसे पकड़ते नहीं हैं, वहींके वहीं चक्कर खा रहे हैं। जब उस रास्तेको पकड़ लेंगे, तभी इस जंगलसे निकलकर मंगलमें पहुंचेंगे। वह है रास्ता संयमा-संयम, इससे चलकर सयममें आवें, फिर ध्यानमें आवें। इससे अपूर्वकरणकी प्राप्ति होती है।

इस मार्गसे अपूर्वकरण मार्गपर आकर जिसमें समानता है उस अनिवृत्तिकरणमें आते हैं, फिर वह कषायोंकी प्रतिध्वनि करके एकदम क्षीण अवस्थामें आ जाता है। यही उसका प्रताप है, जो एक बार उजालेमें देख लिया था, क्षीण मोह बननेकी देर थी। उसी अवस्थाके बाद अनंत-दर्शनकी प्राप्ति होती है। यह विकास विशेष अवस्थाकी दृष्टिसे नहीं होता। वहाँ तो सामान्य के परिचयकी जरूरत है। सयोगकेवली हुए, फिर आखिर यह शरीर कब तक चिपका रहेगा? इन कारणोंके खतम होनेपर एक कारणयोग, जो कुछ थोड़ी देर तक रहता ही है, इसका अभाव होते ही सदाको शरीर दूर हो जावेगा।

सामान्यमें स्वभावदृष्टिसे व विशेषमें पर्यायदृष्टिसे दिखने वाला द्रव्य है। सामान्यकी दृष्टि द्रव्यार्थिकसे व विशेषकी दृष्टि पर्यायार्थिकसे होती है। जब जीव द्रव्यदृष्टिसे देखा जाता है तो द्रव्यसामान्य ही नजरमें आता है। पर्यायोंमें रहने वाला एक द्रव्य वही है जिसमें ये पर्यायें हैं। जब द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो स्वभाव दिखता है। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर पर्यायजाल दिखता है।

॥ प्रवचनसार प्रवचन पंचम भाग समाप्त ॥

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा संशोधित किया गया "प्रवचनसार प्रवचन" का यह नव संस्करण सम्पन्न हुआ।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

# सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्टयाम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविशासविकासभूमिं, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥